P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

यज्ञ में पशुबलि का परीक्षण

लक्ष्मी गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
आई ओ पी, वृन्दावन,
उत्तर प्रदेश, भारत

आलोक कुमार
शोधार्थी
प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
आई ओ पी, वृन्दावन,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में यह परीक्षण करने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन काल में यज्ञ विधान के समय पशुबलि का आयोजन किया जाता था या नही। इस शोध पत्र में विभिन्न साहित्यिक स्रोतों का प्रयोग इस उद्देश्य की जाँच हेतु किया गया है।

जैसा कि सर्वविदित है कि प्राचीन काल में ब्राहमण धर्मानुयायी यज्ञ का आयोजन किया करते थे जिसमें पशुबलि का भी विधान होता था जिसका विरोध प्राचीन काल में सामाजिक धर्मिक आन्दोलन के रूप में बौद्ध एवं जैन धर्म ने किया था।

परन्तु यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि विभिन्न साहित्यिक स्रोतों से यह विदित होता है कि मूलतः यज्ञ विधान में हिंसा करना पूर्णतः वर्जित था इसके लिये अध्वर्यु नामक ब्राहमण को नियुक्त किया जाता था जो यह ध्यान रखता था कि छोटे से छोटा जीव भी यज्ञकुण्ड में प्रवेश न कर सके ऐसे में पशुबलि जैसी बड़ी हिंसा करना एक अतिशयोक्ति उत्पन्न करती है।इसके अन्यत्र यज्ञ को अध्वर भी कहाँ गया है जिसका अर्थ है वह कार्य जिसमें हिंसा नही होती। संभवतः जिन स्थानों पर हिंसा का उल्लेख यज्ञ विधान में हुआ है वह एक प्रतीक या अलंकार रूप में हुआ होगा जिसकी व्याख्या उचित न होने के कारण पशुबलि जैसे कुप्रथा यज्ञ में समहित हो गई होगी। परन्तु प्राचीन एवं आधुनिक काल में होने वाले विभिन्न सामजिक धार्मिक आन्दोलनों ने पुनः इसके स्वच्छ स्वरूप को पुर्नस्थपित कर यज्ञ को प्रतिष्ठा प्रदान की।

मुख्य शब्द : यज्ञ, मेध पशुबलि, अध्वर अध्वर्यु, ब्राहमण

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारत में यज्ञ विधान को सम्पादित किया जा रहा है। यज्ञ विधान पर प्राचीन काल से ही भारत में पशुबलि के रूप में विभिन्न आक्षेप लगाए गए हैं। जिसका ही परिणाम हुआ है कि भारत में पशुबलि के विरोध में बौद्ध एवं जैन धर्म का अभ्युदय हुआ परन्तु यदि हम वैदिक यज्ञ विधान का विशद् अध्ययन करें तो यह पाते हैं कि मूल रूप में वैदिक यज्ञ विधान में पशुबलि का कोई स्थान नहीं है बल्कि इसमें समय–समय पर विभिन्न शब्दों का विभिन्न अर्थों के रूप में प्रयोग होने के कारण अर्थ का अनर्थ हो गया जिसका कुप्रभाव यज्ञ विधान पर पड़ा। इसे हम इस परीक्षण से समझ सकते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य प्राचीन काल में यज्ञ विधान में समाहित पशुबलि की परम्परा का परीक्षण करना है जिसे विभिन्न साहित्यिक स्रोतों की सहायता से पूर्ण किया जायेगा। यज्ञ विधान की पशुबलि से धूमिल हुई छवि को स्वच्छ करना इसका प्रमुख उद्देश्य हैं क्योंकि वैदिक यज्ञ हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देता परन्तु धर्म ग्रंथो में प्रयुक्त शब्दों के अनेक अर्थ एवं व्याख्याकारों की विभिन्न व्याख्यओं ने अर्थ का अनर्थ कर दिया जिसके कारण पशुबलि परम्परा यज्ञ का अंग बन गई जो कि यथार्थ रूप में न होकर अलंकृत या प्रतीक रूप में थी।

विषय विस्तार

वैदिक पशु यज्ञ का वास्तविक तात्पर्य क्या है, नीचे की पंक्तियों में इस पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

उपनिषद् का वचन है–

'' काम क्रोध लोभादयः पशवः''

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, ये पशु हैं। इन्हीं को मार कर यज्ञ में हवन करना चाहिए। अलंकारिक रूप से यह आत्म शुद्धि की, कुविचारों, पाप–तापों, कशाय–कल्मशों से बचने की शिक्षा है।

यज्ञ को '' अध्वर'' भी कहते हैं। अध्वर का अर्थ है– वह कार्य जिसमें हिंसा न होती हो। यज्ञ के ऋत्वजों में एक सदस्य तो विशेष रूप ये नियुक्त

होता हैं, कि कहीं कोई हिंसा तो इस पुण्य कार्य में नहीं हो रही है। इस निरीक्षक को 'अध्वर्यु' कहते हैं। विचार करने की बात है कि जिस यज्ञ में हिंसा न होने का इतना ध्यान रखा गया है ''पाँच भू संस्कार'' की क्रिया में छोटे–छोटे जीव–जन्तुओं की प्राण रक्षा के लिए पहले से ही पूरी सावधानी बरतने की व्यवस्था है। उस कार्य में पशु सरीखे बड़े–बड़े जीवों की निर्दय हत्या करने का विधान कैसे हो सकता है।

जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में पशु–यज्ञ का वर्णन है वह केवल अलंकार रूप है। उसमें एक कथानक बनाकर किसी सूक्ष्म विज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। लोग उस आर्य शैली के वास्तविक तात्पर्य को भूलकर अर्थ का अनर्थ करने लगे। शतपथ ब्राह्मण में पशु–यज्ञ का वर्णन इस प्रकार मिलता हैः–

पुरूषं हवै देवा अग्रे पशुमाले भिरे।
तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम।
सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽश्वमालभन्त ।
तस्यालब्धस्य मेधोपचक्रम।
स गां प्रविवेश । ते गामालभन्त ।
तस्या लब्धाया मेधोपचक्राम ।
सोऽविं प्रविवेश । तेऽविमालभन्त ।
तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्रम।
सोऽजं प्रविवेश । तेऽजमालभन्त ।
तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम ।
स इमां पृथिवीं प्रविवेश। तंखनन्त।
इवान्वीशुः । तं अन्वर्विदन् ।
तौ इूमौ ब्रीहियवा। स यावद्वीर्यबद्ध
ह वा अस्य एते सर्वे पशवः आलब्धाः स्युः
तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति । य एवमेतद्वेद ।
अत्रा सा संपद्यदाहुः पांक्त पशुरिति।

–शतपथ ब्रा. 1 |2 |3 |6–9

अर्थात् – आरम्भ में देवों ने पुरूष का बलिदान किया। उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह घोड़े में प्रविष्ट हुआ। इन्होंने घोड़े को मारा। मारते ही उससे पवित्र भाग चला गया और वह गौ में प्रविश्ट हुआ। उन्होंने गौ की बलि की, उसी समय उसमें से भी वह पवित्र भाग चला गया और वह मेंढे में चला गया। उन्होंने मेंढे की बलि की, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और बकरे में प्रविष्ट हुआ। उन्होंने बकरे को मारा उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह इस पृथ्वी में प्रविष्ट हुआ। तब देव उस पृथ्वी को खोदने लगे। भूमि खोदने से उनको चावल और जौ प्राप्त हुए। इन चावल और जौ से जो हवि किया जाता है, उसका वीर्य और बल उतना ही होता है जितना कि वीर्य पूर्वोक्त हवियों का होता है।

उपरोक्त कथानक का तात्पर्य यह है कि पुरूष, घोड़ा, गौ, मेंढ़ा, बकरा आदि से तो देव काल में ही पवित्र भाग तिरोहित हो चुका है। इनकी पवित्रता पहले ही समाप्त हो गई है, इसलिये वेदों के आरम्भ काल में ही ब्राह्मण ग्रन्थों ने यह घोषित कर दिया था कि अब केवल जौ, चावल आदि पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले पदार्थो में ही हवि के योग्य पवित्र तत्व हैं। पशुओं में वह पवित्र तत्व नहीं है कि वे हवि के काम आ सकें। इस कथानक में पशु वध का समर्थन नहीं, वरन् आलंकारिक रूप से निषेध किया गया है। इसमें तो अन्नादि पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न वनस्पतियों को ही पवित्र हवि माना है। ऐसी ही मान्यता ऐतरेय ब्राह्मण में भी प्रकट की गई है।

पशुभ्यों वै मेध उदक्रामंरतौ ब्रीहिच्श्रैव यवच्श्र
भूतावर्जयाताम्।

ऐतरेय 2 |2 |21

पशुओं में से हवनीय तत्व पृथ्वी में चला गया जो चावल और जौ के रूप ऊपर आया है।

मेध शब्द, मेधा और मेधावी के अर्थ में है। मेधा को अँग्रेजी में 'कलचर' कहते हैं। किसी वस्तु को सुव्यवस्थित ढंग से बनाना, सुधारना या उन्नति करना, मेध शब्द का वास्तविक अर्थ है। गोमेध, अश्वमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ गाय–घोड़े या मनुष्य मारकर हवन करना नहीं वरन्, गो पृथ्वी, मेध उन्नत करना है। भूमि का कृषि के लिए भली प्रकार तैयार करना ही गो मेध है। राष्ट्र की उन्नति, समृद्धि एवं सुरक्षा के प्रयत्न करना एवं एक विश्व राष्ट्र (लीग ऑफ नेशन्स) की स्थापना ही अश्व मेध है। इसी प्रकार मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना, दोष दुर्गुणों से मुक्त करना नर मेध है।

मनस्मृति में नर यज्ञ शब्द अतिथि पूजन के लिए आया है। ''नृ यज्ञो अतिथि पूजनम्''

यदि कोई व्यक्ति अतिथि पूजन न करके मनुष्यों को मारना आरम्भ कर दे, तो इसे मनु का दोष नहीं, वरन् उसकी बुद्धि का ही दोष कहा जायेगा। चरक संहिता में 'अज' ओषधि का वर्णन हैः–

अजानामौशधि राज श्रृग्डीति विज्ञायते।
चरक चिकित्सा प्र. 1

क्या उपरोक्त वाक्य में वर्णित अजा बूटी के स्थान पर बकरी की ओषधि बनावेगा?

महाभारत में भी अज का अर्थ ओषधि और बीज ही किया गया हैः–

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यामिति वा वैदिकी श्रुतिः।
अज संज्ञानि बीजानि, छांग नो हन्तुमर्हष।।
नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः।

महाभारत शान्ति 337

अर्थात् बीजों का यज्ञ में हवन करना चाहिए, ऐसी ही वेद की श्रुति है। 'अज' संज्ञक बीज होते हैं, इसलिए बकरे का हनन करना उचित नहीं। जिस कर्म में पशु की हत्या होती है, वह सज्जनों का धर्म नहीं।

एतरेय ब्राह्मण 1 । 2 । 10 ''पशवो वा इला'' इस पृथ्वी को ही पशु कहा गया है। अन्य स्थानों पर जीवात्मा को भी पशु कहा गया है। क्या इन सबको काट–काट कर होमा जायेगा?

अन्न से बनी हुई वस्तु तथा (रोटी, पूरी आदि) खाद्य पदार्थों को भी पशु माना गया है और उसके विभिन्न भागों की पशु अंगों से तुलना की गई है।

देखिए–

यदा पिष्ठान्यथलोमानि भवन्ति।
यदाप आनयति अथ त्वग्भवति।
यदासंयोत्थय मांसं भवति। संतत इव हि तर्हि

भवति संततमिव हि मांसं यदाश्रृतोऽथास्ति भवति।
दारूण इव हि तर्हि भवति। दारूणमित्यास्थि।
अथ यदुद्वासयत्रभिधारयति तं मज्जानं ददाति ऐशो
सा सम्पद्यदाहुः पांक्तः पशुरिति।
–शतपथ 1 ।2 ।3 ।9

अर्थात्– अन्न का पिसा हुआ आटा ही रोम (बाल) है। जब उस पिसे हुए आटे में जल मिलाते हैं तो वह चमड़ा हो जाता है क्योंकि चमड़े के समान कोमल होता है। जब वह आटा गूँधा जाता है, तो मांस कहलाता है (क्योंकि तब वह मांस के समान चिकना होता है)। जब वह सेका जाता है, तब अस्थि कहलाता है। (क्योंकि अस्थि कड़ी होती है)। जब उसमें घी डाला जाता है, तो उसका नाम मज्जा होता है।

प्राचीन आर्य ग्रन्थों में पशुओं को मारकर हवन करने का कोई विधान नहीं है। पशुओं के नाम से मिलते–जुलते शब्दों का अर्थ ठीक प्रकार न समझकर अन्धकार युग में अज्ञानी लोगों ने हवन में पशुवध करने का अनर्थ भी किया है। इस अनर्थ मूलक प्रथा को प्रचलित कराने में ब्राह्मणों की स्वार्थपरता भी कारण रही हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। भगवान बुद्ध ने पशु बलि प्रारम्भ होने के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला है। पाली के प्रसिद्ध ग्रन्थ ''सुत्त निपात'' के ''ब्राह्मण धार्मिक सुत्त'' भाग से कुछ उदाहरण नीचे उपस्थित करते हैं।

''भगवान बुद्ध जब श्रावस्ती नगर के जेतवन विहार में थे, तब एक कौशल देशीय वृद्ध ब्राह्मण उनके पास आये और भगवान से पूछा, क्या इस काल में प्राचीन ब्राह्मणों का धर्म पालन करने वाला कोई ब्राह्मण है? बुद्ध ने उत्तर दिया–इस काल में ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं दिखता, क्योंकि ब्राह्मणों के जो धर्म एवं गुण हैं, वे उनमें दिखाई नहीं पड़ते। उन्होंने ब्राह्मणत्व के इस पतन का दुख पूर्ण इतिहास बताते हुए कहा–

सुखुमाला महाकाया वण्णवन्ते यसस्सिनो।
ब्राह्मणा सेहिधम्मेहि किच्चाकिच्चेसु उस्सुका।।
यावलोके अवत्तिंसु सुखमेधित्थ यम्पजा।। 15 ।।

जब तक ब्राह्मण कोमल भावनओं वाले, स्वस्थ, सुकर्मी यशस्वी, सत्कर्मों में उत्साही रहे, तब तक संसार में प्रजा के सुख की वृद्धि होती रही।

तेसं आसीविपल्लसो दिस्वानअणुतो अणं।
राजिनो च वियाकारं नारियो समलङ्कृता ।।16।।
रथेचाजञ्ज संयुत्ते सुकतेचित्त सिव्वने।
निवेसने निवेसेच विभत्ते भाग सोभिते ।।17।।
गोमण्डलपख्विूल्हं नारीवरगणंयुतं।
उलारं मानुस भोगं अभिज्झायिंसु ब्राह्मणा।।18।।

उन ब्राह्मणों की गतिविधि उलटी हो गई। धीरे–धीरे तप छोड़कर राजकीय ठाट–बाटों, सुन्दर स्त्रियों, बढ़िया घोड़ों वाले रथों, चित्र–विचित्र परिधानों, अनेक कमरों वाले महलों, गौओं, तथा रमणियों के भोग–विलास में ललचा कर वे ब्राह्मण लोग फँस गये।

ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा ओकांक तदुपागमुं।
प्रभूत धनसिधञ्ञो यजस्सु वहु ते धनं ।।11।।

तब वे मन्त्रों के संग्रह से एक यज्ञ पद्धति बनाकर राजा इक्ष्वाकु के पास गये और कहा तेरे पास बड़ा धन धान्य है, तू यज्ञ कर।

ततो च राजा सञ्ञत्तौ ब्राह्मणेहि रथेसभो।
अस्ममेधं पुरिसमेधं सम्मापासं वाजपेय्यं निरग्गलं।।
एते यागे यजित्वान ब्राह्मणंन अदाधनम् ।।20।।

तब ब्राह्मणों की आज्ञानुसार राजा ने अश्वमेध, पुरूषमेध, शम्याप्रास (सत्रयाग) वाजपेय, निरर्गल (सर्वमेध) यज्ञों को करके ब्राह्मणों को धन दिया।

गवो सयनञ्च वत्थञ्च नारियों समलंकता।
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते सुकते चित्त सिव्वने ।। 21।।
निवेसनानि रम्मनि सुविभत्तानि भागासो।
नानाधञ्ञस्स पूरेत्वा ब्राह्मणांन अदाधनं ।। 22।।

गायें, गलीचे, कीमती पोशाकें, रूपवती स्त्रियाँ, बढ़िया रथ, रंगीन चित्र, विशाल भवन तथा नाना प्रकार के धन्यों से पूरित धन ब्राह्मणों को दिया।

ते च तत्थ धनं लद्धा सत्रिधिंसमरोचयुं।
तेंस इच्छावतिण्णानं भीय्योतण्हा पवड्ढथ।
ते तथ्य मन्ते गन्थेत्वा ओकाकं पुनुवागमुं।। 23।।

उन ब्राह्मणों ने राजा से धन प्राप्त करके अमीर होना चाहा। उनकी तृष्णा और अधिक बढ़ी । तब वे उस समय के मन्त्रों का संग्रह करके पुनः इक्ष्वाकु राजा के पास गये और बोले–

यथा आपाच पठवी हिरञ्ञं धन धानियं।
एवं गावो मनुस्सानं परिक्खारों सोहि पाणिने।
यजस्सु वहु ते वित्तं यजस्सु वहु ते धनं ।। 24।।

जैसे जल, पृथ्वी,स्वर्ण और धन धान्य हैं, वैसे ही गाय भी आवश्यक वस्तु है। तू इन का यज्ञ करे। तेरे पास बहुत धन है तू यज्ञ करे।

ततो च राजा सञ्ञत्तो ब्राह्मणेहि रथे सभो।
नेकसत सहस्सियों गावो अञ्ञे अघातयि।। 25।।

तब ब्राह्मणों से प्रेरणा पाकर राजा ने सेकेड़ों हजारों गौओं का यज्ञ में वध किया।

न पादा न विसाणेन नारसुहिंसन्ति केनचि।
गावो एलक समाना सोरता कुम्भ दूहना।।
ता विसाणे गहत्वान राजा सत्येम घातयि ।। 26।।

भेड़ के समान दीन गौयें जो न पैर, न सींग, से न, किसी अन्य अंग से, किसी को दुख देती हैं, वर्न घड़े भर–भर कर दूध देती हैं, उनके सींगों को पकड़ कर राजा ने वध किया।

ततो च देवता पितरो इन्दो असुर रक्खसा।
अधम्मो इति पकन्दुं यं सत्थं निपती गवे।। 27।।

तब देवता, पितर, इन्द्र, असुर और राक्षस सब एक स्वर से चिल्लाए कि यह गौ पर शस्त्र चलाना घोर अधर्म है।

तयो रोगा पुरे आसु इच्छा अनसनं जरा।
पसूनञ्च समारम्भा अट्टान वुतिमागमुं ।। 28।।

प्राचीन काल में केवल तीन रोग थे –तृष्णा, भूख और बुढ़ापा। पर यज्ञों में पशुवध करने में 18 प्रकार के रोग फैल गए।

एसो अधम्मो ओक्कन्तो पुराणो अहु।
अदूसिकायो इञ्ञन्ति धम्मा धंसेन्ति याजका ।। 29 ।।

इस प्रकार यह पापकर्म (पशु अज्ञ) आरम्भ हुआ और इस अधर्म से यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण धर्म से पतित हो गये।

एवं धम्मे वियापत्रे विभिन्ना सुद्दवेस्सिका।पुथु वित्रा खत्तियां पतिं भरिया अवमञ्ञथ।। 30।।

ब्राह्मणों के पतित होने पर क्षत्रिय भी धर्मच्युत हुए, वैश्य और शूद्र भी अपनी मर्यादा छोड़ कर छिन्न–भिन्न हो गये। स्त्रियाँ पतियों का अपमान करने लगीं।

उपरोक्त उद्धरण में पशु–बलि का प्रचलन ब्राह्मणों की स्वार्थपरता से हुआ मालूम होता है। शास्त्र का मर्म ठीक प्रकार से न समझना और एक शब्द के जो कई अर्थ होते हैं, उनको ठीक प्रकार न समझकर अर्थ को अनर्थ कर बैठने का अज्ञान भी इसका कारण हो सकता है। जो भी हो, पशु–वध को यज्ञ जैसे पवित्र कार्य में सम्बद्ध करना कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।

विचार करने की बात है कि नित्य प्रति की अनिवार्य हिंसा के दुःख से दुःखित होकर उसका प्रायश्चित करने के निमित्त जिस संस्कृति में नित्य पाँच यज्ञ करने का विधान, है, उसमें जानबूझकर बड़े–बड़ पशु कर होमने की बात भी हो सकती है, ऐसी कल्पना भी कठिन है, देखिए–

पंचसूचना गृहस्थस्य चल्ली पेषण्युपस्कारः।
कण्डिनी चोदकुम्भच्श्र बध्यते यास्तु वाहयन्
तासांक्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थ महर्षिभिः।
पच्च क्लृप्ता महायज्ञा प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।

–मनु. 3 ।68,69

प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली, और जल–पात्र ये पाँच हिंसा के स्थान हैं। इनको काम में लाने से ग्रहस्थ पाप में बँधता है। इनसे छूटने के लिए पंच महायज्ञ ऋषियों ने कहे हैं।

इतिहास में ऐसे अश्वमेधों का वर्णन उपलब्ध है, जिसमें घोड़ा तो क्या चींटी तक की भी हत्या नहीं की गई। देखिये।

तस्य यज्ञो महानासीदष्वमेधो महात्मनः
वृहस्पतिरूपाध्यायास्तत्र होता वभूवह।।
प्रजापति सुताश्रैव सदस्याश्रा भवंस्यत्रयः।
ऋषिर्मेधातिथिच्श्रैव ताएड्यश्रैव महानृषिः
ऋषिः शान्तिर्महाभागस्थां वेदषिराच्श्रयः
ऋषि श्रेष्ठच्श्र कपिलः शालिहोत्र पितास्मृताः
आद्यः कठस्तैत्तिरिच्श्र एते षोडस ऋत्विजः
संभूताः सर्व सम्भारास्तास्मिन् राजन्महाक्रतौ।
न तत्र पशुघातोऽभूत सराजै–रास्थितोऽभवत्।

–महा शान्ति 33–38

उस राजा का बहुत विशाल अश्वमेध हुआ उसमें वृहस्पति उपाध्याय थे। प्रजापति के पुत्र सदस्य बने मेधा तिथि, ताण्ड्य शान्ति, वेदशिराः, कपिल कठ, तैत्तिरि और बड़े–बड़े ऋषि उस यज्ञ में ऋत्विज् थे। उस यज्ञ में सामग्री तो विपुल थी, पर एक भी पशु का वध न हुआ।

कोई निर्दोष जीव चाहे यज्ञ में मारकर देवी के ऊपर चढ़ाया जाय, चाहे वह कसाई–खाने में काटा जाय, हर हालत में हत्या की है। उसका परिणाम वही प्राप्त होता है, जो हत्यारों का होना चाहिये। भागवत् में ऐसे हर हत्यारे एक राजा के सम्बन्ध में वर्णन आया है–

भो भोः प्रजापते राजन्यशून्यश्य त्वयाध्वरे।
संज्ञापितान् जीव संघात्रिर्घृणेन सहत्रशः।
एते ता सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशमं तव।
सम्परेतमयः कुटैश्छिन्दन्त्युत्थितमयन्यवः।

– भागवत 4 ।25 ।7–8

हे राजन–तेरे यज्ञ में सहस्त्रों पशु निर्दयता पूर्वक मारे गये। वे तेरी क्रूरता को याद करते हुए क्रोध में भरे हुए तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।

यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग जाता है, इस मनगढंत बात की मसखरी उड़ाते हुए, एक तार्किक ने बहुत अच्छा प्रश्न उपस्थित किया।

पशुच्श्रोत्रिहतः स्वर्ग ज्योतिष्टोमे गमिष्याति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मात्र हिंस्यते।

यदि ज्योतिष्टोम में मारा हुआ पशु स्वर्ग चला जाता है, तो यजमान अपने बाप को यज्ञ में क्यों नहीं हवन कर देता, ताकि वह स्वर्ग को चला जाय।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मूलतः एक शब्द के अनेक अर्थो का होना और लोभी ब्रह्मणों द्वारा गलत व्याख्या पशुबलि को यज्ञ में प्रवेश दिलाती है परन्तु अध्वर एवं अध्वर्यु जैसे शब्द यज्ञ में हिंसा निषेध को इंगित करते है। अतः मूलतः यज्ञ में पशुबलि का कोई स्थान नही था अपितु यह मानवीय हस्तक्षेप एवं गलत व्याख्या का ही परिणाम था। जिसे प्राचीन काल में जैन एवं बौद्ध धर्म के आन्दोलन ने सही मार्गदर्शन प्रदान कर परिमार्जित किया।

प्राचीन एवं आधुनिक काल में हुये विभिन्न सामजिक धार्मिक आन्दोलन का ही परिणाम है कि आज यज्ञ विधान पशुबलि से मुक्त हो सका है जो कि इसका वास्तविक स्वरूप था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मजूमदार, डॉ० रमेश चन्द्र; प्राचीन भारत।*
2. *विधालंकार, सत्यकेतु; भारतीय संस्कृति का विकास।*
3. *शर्मा, रामशरण; प्रारम्भिक भारत का परिचय।*
4. *नागर, अमृतलाल; महाभारत।*
5. *शर्मा, पं० श्री राम; यज्ञ का ज्ञान विज्ञान।*
6. *काणे, पी.वी.; धर्मशास्त्र का इतिहास।*
7. *ब्रहमवर्चस, शांतिकुंज हरिद्वार; दुर्लभ 108 उपनिषद (सरल हिन्दी भावार्थ सहित)*
8. *Eashwaran, Eknath ; The Upanishads*
9. *Joshi, Harish Chandra and ; Ahuti Joshi, Vinod.*